बिखरे फूल

(१४ गद्य-काव्यों का संग्रह)

लेखक

राजकुमार रघुवीरसिंहजी

एम० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक

सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी।

प्रथम	जुलाई	मूल्य
संस्करण	१९३३	एक रुपया

वक्तव्य

अपने इन बिखरे फूलों को समेट कर पुस्तकाकार प्रकाशित कराते कुछ झिझक-सी होती है। आज-कल गद्य-काव्य की बाढ़-सी आ गई है। राय कृष्णदासजी ने 'साधना' की रचना करके, जो नवीन प्रणाली प्रारम्भ की, वही धीरे-धीरे 'अन्तस्तल' और 'अन्तर्नाद' में विकसित हुई। ऐसे कुशल लेखकों की रचानाओं की श्रेणी में अपनी रचनाएँ रखने का साहस, दुस्साहस कहा जा सकता है; किन्तु कई एक प्रतिष्ठित हिन्दी-साहित्य-सेवियों ने इन बिखरे फूलों में से कुछ के लिए अनेक उत्साह-प्रद बातें कही या लिखी हैं। अतएव, उनकी सम्मति से उत्साहित होकर मैंने अपने गद्य-काव्यों को एकत्र करके प्रकाशित करने का साहस किया है।

• अपने हृदय में उठने वाले भावों की तरंगों में जो कुछ भी मुझे सुन्दर प्रतीत हुआ—जिन-जिन भावों ने मेरे हृदय पर चोट की—उन्हें ही मैंने अपने शब्दों में प्रकट करने का प्रयत्न किया है। अपने भावों में जो सर्व-सुन्दर था, वही यहाँ संग्रहीत हुआ है ; अतएव मेरे भावोद्यान में जो-जो पुष्प खिले थे, वे यहाँ एकत्र कर दिये गये हैं। उन्हीं पुष्पों को लेकर मैं आज साहित्य-प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ। जिस भावावेश में आकर प्रथम वार इन गद्य-गीतों की रचना की थी, उसी से अभिभूत होकर आज इन्हें एकत्र किया है। यदि कहीं पाठकों को यह संग्रह अरुचिकर प्रतीत हो, तो निवेदन है, वे अपने ही भावों की भाँति इन्हें भी—मेरे हृदय के उन्मत्त उद्‌गारों को—मुझे अधिक रुचिकर होने के कारण—सहानुभूति प्रदान करेंगे।

• संगृहीत लेख विविध मासिक-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनका लेखन-काल फ़रवरी सन् १९२९ से अक्तूबर १९३१ ई० तक सीमित है। संभव है कि इस संग्रह की कई एक कृतियाँ पुरानी प्रतीत होने लगें ; परन्तु उनके उत्तरोत्तर नवीन प्रतीत होने का कारण मनोविज्ञान है। भाव-साम्राज्य कभी प्राचीन नहीं होता, इतिहास का सिंचन उसको नवीनता प्रदान करता रहता है। समय का प्रवाह किसी

वस्तु के स्थायित्व पर जितना प्रभाव डालता है, वह भविष्य का विषय है। प्रस्तुत काल में मैं इस संग्रह-द्वारा कुछ ऐसे निबन्ध उपस्थित करता हूँ, जो यदि पाठकों का मनोरंजन कर सके, तो मैं अपने साहस को दुस्साहस-मात्र न समझ कर अपने को कृत-कार्य समझूँगा।

राम-निवास भवन
सीतामऊ
बसन्त पंचमी १९८८ वि०

रघुवीरसिंह

समर्पण

जिनके सामने ये फूल खिले
और बिखर गए
उन्हीं
मेरी पूज्या माता को
सादर, सप्रेम
समर्पित ।

सब सुमन - मनोरथ अञ्जलि

बिखरा दी इन चरणों में ;

कुचलो न कीट-सा, इनके —

कुछ है मकरन्द-कणों में ।

—'प्रसाद'

विषय-सूची

जल उठा स्नेह दीपक-सा
नवनीत हृदय था मेरा ;
अब शेष धूमरेखा से
चित्रित कर रहा अँधेरा। 'प्रसाद'

बाल्यकाल बीत चुका है। साथ ही, स्वर्गीय भोलेपन ने विदा ले ली है। वह स्वाभाविक चुलबुलाहट, अज्ञान-जन्य, साधारण ; परन्तु रुचिकर प्रश्नावली, संसार-ज्ञान के प्रति वह अतृप्त जिज्ञासा सर्वदा के लिये भूत के गर्भ में विलीन हो गयी हैं। मानसिक शान्ति, भविष्य का आशा-पूर्ण दृश्य, यह भी अब धीरे-धीरे मस्तिष्क-मंच से प्रस्थान करने लगे हैं।

बिखरे फूल

जीवन का प्रथम सोपान चढ़ चुका हूँ। प्रारम्भिक बातों में से बहुत-सी तो पहले ही से छूट गयी हैं। उमड़ता हुआ यौवन मुझे अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। उसका स्वरूप कितना आकर्षक और मनोहारी है! वह सभी सुखों का देने वाला प्रतीत होता है। मैं उसकी ओर दौड़ा जा रहा हूँ।

पर, आह! मेरे हृदय में अशान्ति की ज्वाला-सी धधक उठी है। उसकी लपकती हुई लपटें मेरी आकांक्षाओं, विचारों तथा सुखों को भस्म करने को आगे बढ़ रही हैं। अरे! इन लपटों का स्वरूप कितना नयनाभिराम है।

नवीन उत्साह समुद्र की भाँति उमड़ रहा है। आगामी जीवन का मार्ग साफ़ प्रतीत हो रहा है। सुनते हैं कि जैसा यह स्पष्ट देख पड़ता है, वैसा भयानक भी है। पग-पग पर गंभीर गह्वर मुँह बाए हुए खड़े हैं। मार्ग कंटकविकीर्ण है और स्थान-स्थान पर घोर संकट उपस्थित हो जाते हैं; परन्तु क्या यह-आपदाएँ मेरे उत्साह को तनिक भी भंग कर सकेंगी?

नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । मैं इन सभी कठिनाइयों को पार कर सकूँगा ।)

किन्तु, क्या इन बाधाओं को अभिभूत करके भी उत्साह का प्रवाह उमड़ता ही रहेगा ?

अरे ! यह क्या हो गया ? मेरे मस्तिष्क की विचित्र दशा है। भीषण संग्राम मचा हुआ है । सोचता था कि अपने मस्तिष्क के बल पर समग्र संसार को उलट-पुलट कर दूँगा ; पर यहाँ तो इस नवीन जीवन के फलस्वरूप कई कठिन समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं । उन्हें सुलझाने के लिए मेरा मस्तिष्क दिन-रात प्रयत्न करता है ; किन्तु वे फिर भी सुलझाये सुलझती नहीं । अगर इन कठिन समस्याओं ही का सामना करना होता, तो मस्तिष्क को कभी की सफलता प्राप्त हो चुकी होती ; परन्तु मस्तिष्क को तो निरन्तर ही हृदय का सामना करना पड़ता है । हृदय ने भी विद्रोह कर दिया है, उद्दाम वासनाएँ भी प्रचंड हो चली हैं । हृदय में जो भीषण दावानल उपस्थित हुआ है, वह हृदय को ही नहीं, मस्तिष्क को भी खाक में मिलाने

का प्रयत्न करता है। इस प्रचण्ड दावानल को धधकाने में सहायता देनेवाली वासनाएँ मोह की आहुतियों से इसे और भी प्रज्ज्वलित कर रही हैं ; अतः दावानल ने भी प्रकांड रूप धारण किया है, भीषण प्रचंडता के साथ जल रहा है।

आह ! क्या इस दावानल को हृदय में रखकर भी मैं जीवित रह सकता हूँ ? प्रकृति ने मुझे इतनी शक्ति नहीं दी है। बाल्यकाल ने बड़े ही लाड़-प्यार से पाला-पोसा है ; किन्तु उसने कभी इस हृदयाग्नि की चिता में बैठकर सुरक्षित रहने का कोई भी उपाय न बतलाया।

• • •

धाँय ! धाँय ! करती हुई अग्नि जल रही है। प्रत्येक श्वास के साथ उसकी गरम लपटें बाहर निकल रही हैं। हृदय लगातार उस दावानल पर पानी की भाँति रुधिर बहा रहा है। समझता है कि हृदयाग्नि इसी प्रकार शान्त हो जायगी ; परन्तु नहीं, यह रुधिर घृत से कम नहीं है और भी प्रज्ज्वलित करता है। हृदय क्या है ? स्मशान-भूमि। विचारों, उद्देश्यों तथा आकां-

त्ताओं और पवित्र भावों को चिताएँ धधक रही हैं ।)
उससे निरन्तर निकलने वाली लपटें इस ईंधन को
पाकर और भी प्रचंडता धारण करती हैं । जो कुछ
सामने पड़ जाता है, उसे भस्मीभूत करती हुई बढ़ रही
हैं । बाल्यकाल की चुलबुलाहट, भोलापन, सौकुमार्य
आदि इस अग्नि में आहुति बन चुके और भस्म होकर
भी अपनी खाक से निश्वास, अविश्वास, निराशा तथा
अवज्ञा को जन्म दिया ।

आह ! यह अग्नि कब तक जलेगी ? शान्ति कब
प्राप्त होगी ? शान्ति-पिपासा दिनों-दिन बढ़ रही है ; परन्तु
पशुता तथा वासनाओं की प्रचंडता का झोंका सहन न
कर सकने के कारण मस्तिष्क स्तब्ध तथा हत-चेतन हो
गया है । हृदय में जलते हुए दावानल की लपटों ने उसे
दग्ध कर दिया है। इस अर्द्ध चेतनावस्था में शान्ति को
वह मृग-मरीचिका की भाँति खोज रहा है। मार्ग अदृश्य
हो गया है, बार-बार इधर-उधर गिरता-पड़ता, भटकता
चला जाता है । मृग-तृष्णा सदैव धोखा देती है । जल
के लहराते हुए तालाब के स्थान में अग्नि की ज्वाला

क्या कुछ कम धोखा है ? मोह-मदिरा शान्ति-सुधा की भाँति प्रतीत होती है। वह पीता है और प्यास बुझाने के स्थान में प्रज्ज्वलित कर लेता है।

इधर दावानल का स्वरूप प्रचंड होता जाता है। ज्ञात नहीं, कब शान्त होगा। मार्ग की यह दशा—कंटकाकीर्ण, विषम और संकटमय ! क्या शान्ति-सुधा की प्राप्ति स्वप्न-मात्र है ? इस दावानल का बुझना क्या असंभव है ?

• • •

यौवन की देहली पर खड़ा हूँ। परिस्थिति अभी से भीषण हो चुकी है। संसार अपने स्वप्न में अनुभव करता है कि यौवन ही मानव-जीवन का सबसे सुन्दर भाग है ; परन्तु मेरी अवस्था इस कथन का प्रमाण नहीं है।

कब तक उस शान्ति-सुधा की खोज करनी होगी ? कब तक यह दावानल जलता रहेगा ! किस-किस की आहुति इसमें और पड़ने वाली है ? जब यौवन की देहली पर ही यह अवस्था है, तो आगे क्या दशा होगी !

बिखरे फूल

किधर जा रहा हूँ ? कहाँ वह शान्ति-सुधा प्राप्त हो सकेगी ? धू-धू ! अब नहीं रह जाता ! धू ! धू !! आह ! कब तक सहना होगा । धाँय-धाँय करती हुई हृदयाग्नि की वे लपटें बढ़ती हुई चली आ रही हैं । आह ! कब तक ? कब तक ?? कब तक ???

फरवरी १९२९ ई०

जीवन के द्वार पर

मानस-सागर के तट पर,
क्यों लोल लहर की बातें ?
कल-कल ध्वनि से हैं कहती,
कुछ विस्मृत बीती बातें ? 'प्रसाद'

यों तो भौतिक जीवन में प्रवेश किये बहुत दिन बीते, कई वर्ष हो गये, जब मैंने इस पार्थिव संसार में पदार्पण किया था; किन्तु आज सचमुच में अपने जीवन के द्वार पर खड़ा हूँ। आज ही मैं अपने जीवन के द्वार पर आ गया, आज ही मैं एक नवीन मार्ग पर पदार्पण कर रहा हूँ। यह स्फूर्ति मुझे कैसे हुई ? क्योंकर मैं इस सत्य को—यदि यह सत्य है तो—

जान पाया—यह बात मेरे ही लिए एक पहेली है। शीघ्र ही मैं एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर हूँगा, मुझे एक दूसरे—अब तक अपरिचित-संसार की हवा खानी होगी। ऐसा मैं क्यों विचारने लगा, किस प्रकार यह मेरे मस्तिष्क में प्रविष्ट हुआ? इसका रहस्य मेरे लिए भी रहस्य ही है। यदि सच पूछा जाय, तो इस विचार के कूल पर मेरी बुद्धि अबोध बालिका के समान अब भी खेल रही है। मेरे परिवर्तन का सूत्र एक अज्ञात शक्ति के अधीन है। कहाँ, कैसे और किस बात में यह परिवर्तन निरंतर हो रहा है—यह प्रश्न मेरे सम्मुख निरुत्तर प्रश्न-सा है। केवल मेरे मस्तिष्क में यह भावना उठती है। और मेरे हृदय का स्पन्दन प्रकट करता है कि कोई नई दुनिया सामने है, जिसका अनुभव अब-तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसी मानसिक अनुभूति ने मुझमें नवीनता की विद्युत्-सी उत्पन्न कर दी है।

नवीन जीवन के आगमन ने समय की वेदी पर पुरानी प्रवृत्तियों का बलिदान कर दिया। मैंने इतने वर्षों तक एक ऐसे मार्ग को तय किया है, जो अब भी

अज्ञात है, न तो मैंने उसे पहचाना और न अब इच्छा होते हुए भी उस पर लौट सकता हूँ। वह मार्ग समाप्त हो गया और नये ने दर्शन दिये। कुछ लोगों की धारणा है कि इस नवीन वातावरण में प्रवेश करते ही प्राचीन स्मृतियाँ निस्तेज होकर लुप्त हो जाती हैं; अतः यह नवीनता मुझे पूर्व जीवन का सिंहावलोकन करने के लिये उत्सुक करती है। पुनः अननुभूयमान और आज पुनः अपरिक्रम्यमाण यह मार्ग मेरे हृदय को पुनः एक बार अवलोकन करने के लिये अपनी ओर आकर्षित करता है।

अभी तक नवीन जीवन-पथ पर पदार्पण न करने के कारण वह पुराने संस्कार, वह प्राचीन संसर्ग मुझसे—मेरे मस्तिष्क से—दूर नहीं हुए हैं। नहीं जानता कि आगे बढ़ कर अपने इस विगत जीवन के प्रति मेरा क्या भाव होगा। आज तो उससे विदा लेने में हृदय को वेदना होती है और विप्रयोग का सुवसर दुखद हो रहा है। नहीं जानता कि आगे चलकर अपने इस विगत जीवन के प्रति मेरा क्या भाव रहेगा; आज

तो उससे अलग होते दुःख अवश्य होता है, आज कम-से-कम अपने विगत जीवन के प्रति मेरा प्रेम उद्वेलित हो रहा है। यह मैं पूर्णतया जानता हूँ कि उस जीवन से पुनः सम्मिलन नहीं होगा, यह चिर-वियोग है; अतः इस अवसर पर मुख से आह निकल पड़ती है। इस वियोग पर आज तो मुझे दुख हो रहा है। इस दुःख का कब अन्त होगा—यदि अन्त हो सकता है—यह मुझे ज्ञात नहीं है; किन्तु आज मैं अपने आँसुओं से बिना इसका पाद-प्रक्षालन किये इसको जाने न दूँगा। प्रेमियों के वियोग पर, तथा एक के चले जाने पर जहाँ तक दृष्टि से वह ओझल नहीं हो जाता, या दूसरे को विवश होकर अपनी राह नहीं पकड़नी पड़ती, वहाँ तक जो दूसरा प्रेमी अपने प्रियतम को जाने देता है और उसके दर्शन से आँसू बहाता है, ठीक वही हाल आज मेरा भी हो गया है।

अपने पुराने जीवन-पथ के छोर पर खड़ा, मैं उस जीवन को ओर बिना एक दृष्टि डाले नहीं रह सकता। सम्भव है नवीन जीवन की देहली पार करते

ही यह दृश्य मेरी आँखों से सर्वदा के लिये छिप जाय, इस विचार से उस द्वार के भीतर घुसने के पहले ही आँख भर कर देखता हूँ ; अपने उन दिनों का स्मरण करता हूँ, जब पसीना गुलाब था।

• • •

मैं कहाँ से आया हूँ ? किस पथ पर अबतक भ्रमण कर रहा था ? अब आगे कौन-सा मार्ग पकड़ना है ? आगे का पथ कैसा है ? वह किधर पहुँचावेगा ? यह सब कठिन प्रश्न हैं, जिन्हें मेरा सुकोमल विकसित होता हुआ मस्तिष्क असाध्य समस्या समझता है। पूर्णतया विकसित और ज्ञान-वृद्ध मस्तिष्क वाले भी सारे जीवन भर इन अगम पहेलियों को सुलझाने का प्रयत्न करते आये हैं ; परन्तु उनका यह भगीरथ-परिश्रम अभी तक निष्फल ही सिद्ध हुआ है। वे इन प्रश्नों का उत्तर निरुत्तर भाव से देते हैं, जो असंतोष-प्रद और व्यर्थ है। अपने जीवन के प्रारम्भ की अन्य किसी भी बात का मुझे कुछ भी भेद ज्ञात नहीं और न मैंने उस मार्ग की पार्श्ववर्ती भूमि का सौन्दर्य्य ही देखा है। मैं

नहीं जानता कि वह कौन-सा सम्मोहनास्त्र था, जिसने मुझे अपने ऊपर सवार किये बिजली की गति से इस मार्ग पर उतार दिया। अथवा, किस अभौतिक पट्टी ने मेरी इन भौतिक आँखों पर ऐसा अधिकार जमाया कि पुष्प को दिखा कर उसके रहस्य को छिपा दिया। हाँ, ज्यों-ज्यों समय बीतता था, ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, स्वभाव दृश्य विभूतियों में अंगों पर से अंचल सरका रहा था।

उस समय कठपुतली सजीव थी, मैं अपने को उसका सहचर मानता था। समय अपने हाथों में मुझे भी आज की नाई कठपुतली बनाये हुए था। आरम्भ में न तो दूसरे व्यक्तियों का ज्ञान था और न अपने व्यक्तित्व ही का। मैं नहीं जानता था कि अन्य व्यक्तियों की भाँति मुझमें भी व्यक्तित्व है। मैं संसार से पूर्णतया अजान था; परन्तु अन्त में समय ने जादू की लकड़ी फेरी, मेरी बुद्धि फिरी, और देखो! मैं व्यक्तित्व-युक्त होगया; परन्तु वह समय—वह स्वर्णमय दिन—अब कहाँ है, जब मैं अनभिज्ञता की

दिखाई दी। सारे संसार की वस्तुओं का बाना बदल गया। वे खिलौने—वे रंगदार सुन्दर खिलौने—भूल गये। संसार के प्रति मेरी दृष्टि स्तब्धता के साथ देखने लगी।

संसार ने मेरे ध्यान को आकर्षित करने में कोई कोर-कसर न रखी। जब जिज्ञासा मूर्तिमती हो गयी, हृदय में एक प्रकार की पिपासा उत्पन्न हुई। मैं पुनः अधीर हो उठा। इस अधैर्य के समुद्र में बहते-बहते थकने से बचाने के लिए पुस्तक की पतवार हाथ आयी। आँखें पुस्तकों में गड़ गयीं; परन्तु हृदय और भी उखड़ा, संसार को जानने की उत्कट अभिलाषा और उसके समान को अनुवर्तन करने की विकट इच्छा, हृदय में उमड़ने लगी। पुनः खिलौने मिले; परन्तु इस बार उनका रूप ही परिवर्तित था। इस बार का खेल वह पुराना खेल न था, यह था कठ-पुतलियों का खेल। मैंने मानव-जीवन का अनुवर्तन प्रारम्भ किया; आह यह जीवन कैसा है? मनुष्य के भिन्न-भिन्न कार्यों का अन्तिम तात्पर्य क्या है? इन

प्रश्नों से मेरा कुछ भी संपर्क न था। मैं तो अनुकरण में लीन था। अनेक बार मुझे अलुकरण-शील देख कर मेरे माता-पिता हँसे। अनेक बार उनके वात्स-ल्य ने मेरी उत्साह-वर्द्धक प्रशंसा की, मैंने भी अनु-करण-चातुर्य की शेष सीमा दिखाने में कसर न रखी। उस समय यह किसको ज्ञात था, कि आज का वह मेरा खेल, कल एक बेढब पहेली हो जायगा। आज जो खेल मुझे मनोरंजन प्रदान कर रहा है, वही कल को एक चिन्ता-जनक, एक उलझी हुई समस्या हो जायगा।

• • •

निदान वे दिन भी व्यतीत हुए, समय ने फिर एक पल्टा खाया। मेरे जीवन ने भी एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर होने की ठानी। वे पुराने खिलौने, वे सुन्दर पुतलियाँ, काठ और लोहे की बनी हुई प्रतीत होने लगीं। बरह वसन्तों को बिता कर मुझे ज्ञात होने लगा कि वसन्त भी एक ऋतु है। प्राकृतिक दृश्यों का अर्थ मैं आनन्द के कोष मे देखने लगा।

सांसारिक जीवन ने मुझे इतना मुग्ध कर लिया, कि मैं मृग-मरीचिका को कल्लोलित तरंगों से भरी हुई देखने लगा। इस मनोरम जलाशय में न तो कहीं खिलौने तैरते हुए दिखायी पड़ते थे और न पुतलियाँ ही डुबकी लगाती हुई। अभी तक मुझे ज्ञात था, कि वे खिलौने, वे पुतलियाँ जीवन का अभिनय करती हैं; परन्तु अब तो मैं ही संसार के रंग-मंच पर अपना अभिनय करने को उत्सुक हो गया। मुझे अब ज्ञात हो गया कि जो कुछ चमकता है, हीरा ही नहीं है; काच भी है। जो कुछ सौन्दर्य्य संसार में है, वह उतना ही सुन्दर नहीं है, जितना कि मुझे पहले प्रतीत होता था। वह असुन्दर भी है—फूल ही नहीं है, काँटा भी है। जो अग्नि पहले इतनी नयनाभिराम लपटों से आनन्द देती थी, अब वह जलाने की भी शक्ति रखती है; परन्तु भावुक अब भी कहते हैं, कि उस समय सुख और शान्ति से युक्त जीवन को, अच्छा हुआ कि इस समय के दुःख और अशान्ति के हाथों ने नहीं छू पाया था।

वे भी दिन थे, जब समय से मेरी बड़ी शिकायत

थी। मैं बार-बार उससे प्रश्न करता था, कि तू जल्दी-जल्दी क्यों नहीं बीत जाता। तब भी वह निष्ठुर प्रतीत होता था और आज भी उसकी निष्ठुरता में न्यूनता नहीं प्रतीत होती ; वरन् अधिकाधिक निष्ठुर होता जाता है। इसने मुझे उस सुखमय जीवन से निकाल कर इस विचित्र सांसारिक जीवन की धारा में डाल दिया। मैंने अपने खिलौनों से बहुत-कुछ प्यार रखा ; पर यह निष्ठुर काल मुझे जीवन की अधिक स्पष्ट कठिनाइयों की ओर खींच ही लाया। अब मुझ पर सांसारिक रंग और भी चढ़ने लगा।

मैं सांसारिक जीवन में अवतीर्ण होने के लिए व्यग्र हो उठा। अब मेरे उद्देश्यों में, रहन-सहन में, रंग-ढंग में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। मैं यह चाहने लगा कि संसार में कोई भी अब मुझे बालक न समझे। मेरी गिनती बड़े-बूढ़ों में हो, हँसकर कोई मेरे कथन का तिरस्कार न करे, बालक मुझे आदर की दृष्टि से देखें, आदि-आदि भावनाएँ मेरे हृदय में उठने लगीं ; परन्तु प्रति-क्षण मुझे प्रतीत होने लगा

कि मेरी इच्छाओं का पूर्णता पाना असम्भव है। जहाँ देखता था, वहीं मेरा तिरस्कार आगे खड़ा था। उस समय मेरे हृदय पर क्या बीतती थी, मेरे कोमल भावों को कैसी ठेस लगती थी, यह मेरे अतिरिक्त कौन जान सकता था। अपने प्रति किये गये इन अत्याचारों से मैं तिलमिला उठता था। मैं समय के प्रति क्रोध की दृष्टि से देखने लगता था। मैं चाहता था कि कुछ वर्ष क्षण में बीत जाँय, जिससे मेरी इच्छाओं को सफल होने का अवसर प्राप्त हो। उस समय क्या जानता था कि तवे पर से आग में कूदने की तैयारी कर रहा हूँ। मुझे ज्ञात न था कि जिसे मैं फूलों की सेज समझ रहा हूँ, वह जलते हुए अंगारों की शय्या है।

• • •

उसी समय मेरे जीवन के रंग-मंच पर पुनः पट-परिवर्तन हुआ। हृदय ने भी करवट बदली। आज-तक मेरा हृदय एक प्रकार से संसार से उदासीन रहता था। उसमें संसार के प्रति एक अज्ञात सुख के

सिवा और कोई भाव न था ; किन्तु अब उसमें भी एक प्रवाह उमड़ पड़ा। बालू की भीत से स्नेह का स्रोत-सा बहता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। मेरे हृदय के शाद्वल में प्रेम की हरियाली छा गयी। मैंने देखा कि अब मैं अन्य व्यक्तियों के प्रति आकृष्ट होने लगा। विश्व के प्रति एक नवीन प्रेम की भावना उमड़ पड़ी ; परन्तु इस कठोर भाव-हीन विश्व ने मेरे प्रेम को उचित रूप से संचित न किया। भौतिक संसार में सफलता-पूर्वक विचरनेवाले व्यक्ति अपने उन पुराने अनुभवों को भूल चुके थे, वे क्या जानते थे कि मेरे हृदय में कौन भाव भरे पड़े हैं। प्रेम के उत्तर-स्वरूप मेरे व्यवहार को धृष्टता समझ कर कड़ी फटकार मिलती थी, जिससे मेरा हृदय तड़पने लगता था। अनेक बार ऐसे कटु व्यवहार पर रोया हूँ, अनेक बार क्रोध आया है, मान का भाव भी कई बार उठा है ; किन्तु फिर भी मैं बालक था। वह मान, वह क्रोध कब तक टिकता ? शीघ्र ही भुला देने की वह आदत अब तक मैं भूला न था।

मैत्री-भाव भी उमड़ पड़ा। स्कूल में कई एक सहपाठियों तथा अन्य सम-वयस्क बालकों से मिलना होता था। हृदय ने उनके प्रति एक नये ही भाव का अनुभव किया; परन्तु उन दिनों की मैत्री, उस समय की सरलता तथा पारस्परिक प्रेम को याद करके आज भी शरीर पुलकित हो जाता है। उनके स्मरण-मात्र से—उस समय के बीत जाने के विचार-मात्र से—आँखों में आँसू आ जाते हैं। उस समय परस्पर कितना शुद्ध प्रेम होता था, उसमें कितनी सरलता थी, कपट का कितना अभाव था, अनबन हो जाती थी, तो कितनी अचिरस्थायी होती थी! कितनी जल्दी पुनः मेल हो जाता था! उस समय के सरल शुद्ध स्वाभाविक प्रेम को याद कर आज इस क्रूर काल पर क्रोध आये बिना नहीं रह सकता। उस स्वर्गमय जीवन से इस कुटिल जीवन में ढकेलने के अपराध का बदला लेने के लिए, क्रूर काल से, कौन उतारू न होगा।

• • •

समय का प्रवाह बहता ही गया। जीवन के चक्र

के साथ ही मेरी वयस भी बढ़ती गयी। अब मेरे जीवन में यौवन की मस्ती ने प्रवेश किया। जीवन में एक प्रकार की मादकता छाने लगी। साथ-ही-साथ असन्तोष की मात्रा बढ़ी। हृदय में न अब पहले की-सी सरलता रही, न शान्ति। मैं बहुत कुछ पढ़ चुका था; परन्तु किसी भी प्रकार मैं अपनी पुरानी सरलता तथा शान्ति को पुनः प्राप्त करने में असफल हुआ।

मेरे भावों में भी परिवर्तन हुआ। आज तक मेरे हृदय में प्रेम उमड़ता था। मेरा हृदय सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होता था; किन्तु इससे अधिक कोई भाव न था। अपने सहपाठियों, मित्रों आदि के प्रति जो प्रेम उमड़ता था, वह अब तक हृदय से बाहर नहीं निकलता था। सौन्दर्य्य को देखकर मैं मुग्ध हो जाता था। उसकी ओर आकृष्ट होता था; किन्तु कोई दूसरा भाव नहीं आया था। पर अब मैं हृदय के भावों को प्रकट करने के लिए उत्सुक हो गया। अब चाहने लगा कि जिनसे मैं प्रेम करता था, उन पर अपना प्रेम प्रकट करूँ। उन्हें बताऊँ कि मेरे हृदय में

उनके प्रति अगाध प्रेम का सागर किस प्रकार हिलोरें मार रहा है। अब तक मैं जो कुछ देखता था, वह आँखों के लिए दर्शनीय-मात्र था। अब मैं उसे स्पर्श करने, उसकी सुन्दरता का व्यक्तिगत अनुभव करने, तथा उसे अपनाने को चंचल हो उठा। कई विचार मेरी इन इच्छाओं को रोकते थे; किन्तु हृदय रोकने से नहीं रुकता था, वह मचल जाता था।

• • •

परन्तु, अब देखता हूँ, वह मस्ती खुमारी में परिवर्तित हो रही है। मुझे प्रतीत होता है कि अबाध तथा अविरल गति से बहने वाले उस प्रेम के सोते की राह में यत्र-तत्र रोड़े पड़े हैं। प्रवाह भी अब कुछ कम होने लगा है। हृदय की असंतोष तथा अशान्ति वास्तविक जीवन के कुछ कठोर थपेड़े खाकर बहुत कुछ कम हो गयी है। फिर भी वह बुझी नहीं है; अन्दर ही अन्दर जल रही है।

मुझे सर्वत्र अपने जीवन तथा भावों पर एक विचित्र पाला-सा पड़ता दिखाई देता है। मेरे सरल

सुकोमल भावों का उद्यान आज उजड़ गया। मेरे सरल शुद्ध स्वाभाविक प्रेम का सोता कलुषित हो गया। उसका जल जाड़े के मारे जम-सा गया है, प्रवाह में शिथिलता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। मेरे अन्तर्जगत् को श्मशान-स्वरूप देखकर हृदय रोता है। जो एक समय मेरे जीवन के एक-मात्र आभूषण थे, जिन पर मुझे अभिमान था, उनको नष्ट होते देखकर मेरी आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं।

नहीं जानता, कि यह शैत्य कब तक रहेगा, यह बर्फ कब तक पिघलेगी। क्या इस उजड़े हुए उद्यान में पुनः पुष्प खिलेंगे? क्या उद्यान में वही पुरानी बहार आएगी? आजकल की दशा देखते हुए मैं कुछ भी नहीं कह सकता। देखें भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है।

• • •

अब प्रतीत होता है कि जीवन में पुनः परिवर्तन होने वाला है और वह परिवर्तन बहुत बड़ी उथल-पुथल उपस्थित कर देगा। मैं इस बार एक बारगी एक विचित्र वातावरण में प्रवेश कर रहा हूँ। कहाँ तक मेरे

पुराने संस्कार और संसर्ग भविष्य में काम देंगे, सो मैं नहीं जानता। हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मेरे हृदय में एक नये तूफान के आने के लक्षण पुनः दिखाई दे रहे हैं।

अब मुझे अपने नये मार्ग पर जाना ही होगा। कहाँ तक अपने चलने का समय टाल सकूँगा। मैं ठहर नहीं सकता। यदि किसी प्रकार मैं समय को थोड़ी देर के लिए भुलावा देने में सफल हो सका, तो...; परन्तु यह तदबीर अधिक देर तक काम नहीं दे सकती। वह कराल-काल किसी को नहीं छोड़ता। अपनी भीषण चक्की में वह प्रत्येक को—चाहे वह पशु हो, पक्षी हो, अथवा मनुष्य हो, राजा हो या रंक हो, वृद्ध हो या बालक हो, पुण्यात्मा हो या पापी हो—पीस ही डालता है।

अपने विगत जीवन का सिंहावलोकन करते हुए बहुत देर हो गई। उसके वियोग में दो आँसू तथा उसकी स्मृति में तप्त जल की दो अञ्जुली अर्पण करके विदा होता हूँ। कितने दुःख के साथ आकर मैं

विदा ले रहा हूँ, यह मैं ही जानता ; परन्तु विदा लेनी ही पड़ेगी ।

• • •

यह तो हुआ विगत जीवन का हाल ; परन्तु आगे कहाँ जा रहा हूँ ? यह मैं कैसे बता सकता हूँ । भविष्य का मार्ग अदृश्य है, दिखाई नहीं पड़ता । इस मार्ग पर भीषण कुहरा छाया हुआ है । घनीभूत बादल उसे मेरी दृष्टि से छिपाए हुए हैं । मैं अज्ञान, भविष्य में न जाने किस ओर जाऊँगा । उस अज्ञात मार्ग में न जाने कितनी कठिनाइयाँ, कितनी आपदाएँ हैं, जिनका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं । अब तक तो मैं उस कराल क्रूर काल के हाथ को कठपुतली था और अब भविष्य में मेरा उसका क्या संबंध होगा, यह मैं नहीं जानता । मुझे ऐसे अन्धकार-पूर्ण भविष्य में केवल दो बातों का भरोसा है—प्रथम तो मुझे अपनी शक्तियों पर भरोसा है, दूसरे मुझे जगन्नियन्ता परम-पिता पर भरोसा है, जिसकी कृपा से कोई वंचित नहीं ; जैसे—अत्याचार-पीड़ित यहूदियों को अत्या-

बहते हुए जल की नाईं मेरा अल्हड़पन मुझे छोड़कर चल दिया। मेरी सुकोमल बुद्धि असहाय, अरक्षित रह गई। अल्हड़पन बिदा ले चुका था ; परन्तु अब तक विवशता की आहें तथा विस्मृति का घना कुहरा, मेरे जीवन को अपनी सुरक्षित चादर के छोर में नहीं लपेट सके थे।

शिकारी की गोली-द्वारा सद्याहता मृगी के पास खड़े छौने की नाईं, मैं भी संसार की विचित्रता से स्तंभित हो गया। कुछ भी नहीं समझ सका। अज्ञात आशंका से कंपित हो उठा। अन्तर्दृष्टि से संसार की ओर देखा ; किन्तु सर्वनाशकारी समय के वीभत्स

स्वरूप को देखकर डर गया। आँखें बन्द कर लीं। सुकोमल हृदय से प्रथम बार चीख़ निकली।

जब हृदय की धड़कन कम हुई, तो आँखें खोलीं...सर्वत्र एक अद्वितीय प्रकाश छाया हुआ था।

• • •

मानव-जीवन के प्रभात-काल में अरुणिमामयी प्राची की ओर चकित होकर जो देखा, तो एक नशा-सा छा गया। आँखें न हटीं। उस लालिमा में अद्भुत आकर्षण था, एक मादकता थी। विस्फारित नेत्रों के द्वारा मैंने उषा की उन अधखुली पलकों में भरी हुई, प्रफुल्ल विकास की उस लाल-लाल मदिरा का पान किया।

वह उन्मादकारी मदिरा थी। लता पर लटके हुए, पूरे पके हुए, अंगूर की भाँति वह प्याला रस से लबालब भरा था। उसमें नवयौवन का ताज़ापन था। चैत्र-मास के गुलाब के फूलों-जैसी मीठी मादक सुगन्ध थी—उसमें अनार के दानों के समान लाली थी—उसमें खिलती हुई कली की-सी तड़प थी—वह

बसन्त ऋतु की प्रभात-वायु के समान सुखदायक थी।

अज्ञ शिशु की नाईं, या मंत्र-मुग्ध जीव की भाँति मैं बेहोश हो गया। अनजाने हाथ बढ़ा, मैंने प्याला उठा ही लिया और जब होश आया, तो देखा कि मैं उस प्याले की मदिरा पी चुका था। अगर उस प्याले में कुछ शेष था, तो वे थे थोड़े से बुद्बुद् और कुछ फेन।

• • •

बस, एकही बार पी थी—एक ही बार! तब भी एकही प्याला—केवल दो-तीन घूँट।

अब यौवन का उन्माद व्यापने लगा। पूर्ण वेग से धमनियों में रक्त का संचार हुआ। हृदय उछलने लगा। आँखों में लाली छा गयी। उनमें मादकता भर गई। उनकी कोरों में कुछ हलाहल विष भी एकत्र हो गया। ओठों पर मुस्कराहट नृत्य करने लगी और केशों की दो लटें मुख के दोनों ओर चौंर डुलाने लगीं।

अब नशा आया। मैं कभी पीता न था। आज ही प्रथम वार मदिरा ओठों तक ले गया था। और

वह भी थी यौवन-मदिरा ! उछल-कूद में हृदय के सारे बन्धन टूट गये—मुक्त हो गया, बेहोशी आ गयी, मस्ती छा गयी ।

• • •

वह यौवन-मदिरा थी, बेहोशी में अनजाने मन्त्र-मुग्ध की नाईं पी गया था । हृदय में अग्नि-प्रज्ज्वलित हो गई । जलन होती थी ; किन्तु इस जलन में भी अपूर्व आनन्द आता था ।

अब मस्ती का नर्तन आरम्भ हुआ । मेरे लिए सारे विश्व में मदिरा की वह उन्मादक लाली छा गई । मैं उन्मत्त हो गया । बेहोशी को ढकेल कर उसका आसन मुक्ति-भाव ने ग्रहण किया । एकछत्र शासन करने लगा । मर-मिटने की, कुछ करगुजरने की साध उठ खड़ी हुई । इस सुन्दर संसार में उन्मत्त आँधी की भाँति मैंने प्रवेश किया ।

संसार में अब मुझे मेरे अतिरिक्त कोई भी दिखाई नहीं देता था । देखा, आकाश काँपता था, पृथ्वी थर्रा रही थी, बादल गड़गड़ा रहे थे । बिजली मेरे

सम्मुख नत-मस्तक हो गयी थी। बसन्त की बयार मेरे लिए विजन डुला रही थी। पुष्पों ने अपने आप को मेरी राह में डालकर धन्य समझा। वृक्षों ने मेरे मस्तक पर छत्र लगाया। लताओं ने मुझ पर चौंर डुलाना आरम्भ कर दिया।

मैं मतवाला होगया। मेरी धमनियों में उस लाल रुधिर की बाढ़ आ रही थी। फूटते हुए कोंपल की तरह मेरा यौवन प्रस्फुटित हो रहा था। उमड़ती हुई नदी के पाट के समान मेरा वक्ष-स्थल विशाल होगया।

• • •

यौवन की पहली ही करवट थी। नवजीवन की मदिरा का पहला ही प्याला था। उसमें मादकता थी, मस्ती थी, बेहोशी थी।

मैं अलसाया हुआ पड़ा था। आँखें खोलीं, तो देखा, बैठा हूँ। इस अनजान संसार में सब ओर घना कुहरा छाया हुआ था। कुछ भी नहीं दिखाई देता था, केवल प्रकाश की कुछ किरणें यत्र-तत्र घुसती हुई दिखाई पड़ती थीं।

कुछ बीती बातें याद आती थीं। कुछ भीनी-भीनी सुगन्ध भी महक रही थी। मुझे प्रतीत हुआ कि नशा उतर रहा था, फिर भी खुमारी शेष थी।

परन्तु हृदय में कसक जान पड़ी। कुछ दर्द था— वह भी दिल के पहलू में ; इससे अधिक नहीं जान पड़ा। विस्मृति की ठंढी पट्टी चढ़ी हुई थी। फिर भी दर्द मालूम होता था।......आँखों से दो आँसू टपक पड़े।

किन्तु......अरे, यह क्या ? किस अज्ञात व्यक्ति का वह गोरा-गोरा सुगठित हाथ, वह सुन्दर प्याला, उसमें भी वही लाल-लाल मदिरा।......प्यासे की नाईं मैंने हाथ बढ़ाया। प्याले को लेने का प्रयत्न किया।

आह ! वह हाथ अदृश्य हो गया। वह प्याला गिर पड़ा, मदिरा ढलक गयी, मैं चीख पड़ा।

•　　　　•　　　　•

केवल सपना था। अधिक कुछ नहीं। मेरे हृदय-संसार का धूम-केतु था। न जाने किधर से आया था, न जाने कहाँ चला गया।

नहीं, सपना नहीं हो सकता। हृदय का दर्द अब

भी बाक़ी है। उन्माद का प्रभाव अभी दिखाई पड़ता है। सारे शरीर में यत्र-तत्र ऐंठन मालूम होती है।...

परन्तु वह लाल मदिरा, अरे! वह लबालब भरा हुआ प्याला, और यौवन-मदिरा की वह बोतल...... स्मृति-मात्र से दिल फड़क उठता है।

बस एक ही प्याला पिया था! एक ही बार पी थी; किन्तु वह भी खूब छक कर और वह बेहोशी...

• • •

आह! मैं दर्द के मारे चीख़ पड़ा। मेरे पैर में कुछ धँस गया। आँखें खुल-सी गईं। उस अज्ञात लोक से एकाएक परकटे हुए पक्षी की भाँति धम से आ गिरा।

देखा, मेरे ही पैरों के पास यौवन-मदिरा से भरी हुई वह बोतल खाली पड़ी थी और वह प्याला टुकड़े-टुकड़े बिखरा पड़ा था। उस बेहोशी में न जाने कब वह प्याला उस कठोर पृथ्वी पर गिरकर चूर-चूर हो गया।

जिस प्याले को मैंने बड़े प्रेम से चूमा था, उसकी

यह भग्नावस्था देखकर, उन टूटे हुए टुकड़ों को देख-कर, मेरा दुखित हृदय फट गया। दो बूँद आँसू ढलक पड़े। दुख के मारे मैं रो पड़ा।

उस सुन्दर यौवन-मदिरा को यादकर, उस बेहोशी के विलुप्त हो जाने पर, उस सुन्दर संसार के विध्वस्त हो जाने के विचार-मात्र से मैं क्षुब्ध हो गया। जो आँसू ढलके, वे उसी प्याले के टूटे टुकड़ों पर पड़े।

कहाँ तो वह सुन्दर प्याला और कहाँ यह भग्न क्षत-विक्षत टुकड़े! कहाँ वह लाल-लाल सुन्दर ठंढी मदिरा और, कहाँ यह श्वेत गरम-गरम आँसू! कहाँ वह उन्मादकारी जीवनदायिनी सुगन्धित मदिरा, और कहाँ विवशता के तथा अपनी भग्न आशाओं, विचारों, तथा आकांक्षाओं पर ढलके हुए यह निर्जीव आँसू! उस खुमारी का वह प्रारम्भ और उसका इस प्रकार अन्त होना! अधिक नहीं, कुछ ही क्षणों का अन्तर था।

उस भग्न हृदय की दरार से एक आह निकली—एक सर्द निःश्वास!

• • •

आह ! ढूँढ़ता हूँ उस पिलानेवाले को, जिसने मुझे अनजाने ही यह मदिरा पिला दी। पहले कभी नहीं पी थी ; परन्तु अब भुलाए नहीं भूलती। ओठों में लगा वह प्याला, वह बेहोशी, यौवन की मस्ती........! वह खुमारी भी चली गई, शरीर अभी तक अलसाया हुआ है। पुनः तृषा लगी है। चाहता हूँ, कहीं वह अदृष्ट पिलाने वाला मिल जाय। पुनः एक बार ढले वही मदिरा, वही प्याला, एक बार और पी लूँ— अधिक नहीं, एक ही बार !

मार्च १९३० ई०
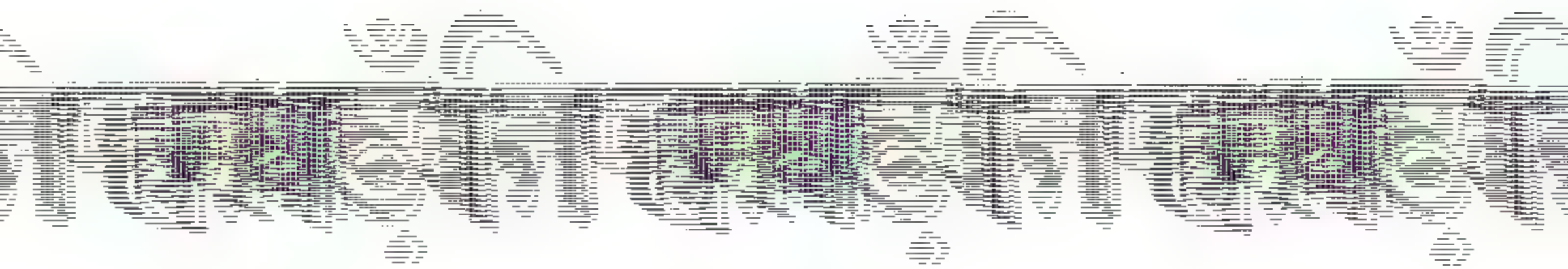
बड़ी देर से मैं खड़ा तुम्हारी राह देख रहा हूँ। नहीं जानता कब तक आओगे।

'आवन कहि के अजहुँ न आये
करि-करि वचन गये।'

गोधूली का समय हो गया था, समझा था कि दिन में, उस प्रतिक्षण क्षीण होने वाले प्रकाश में, अनन्त पथ पर भ्रमण करते हुए, कम-से-कम एक रात्रि के लिये तो तुम मेरे यहाँ ठहरोगे। एक ही झोपड़ी में रात्रि भर मेरे यहाँ रहोगे; परन्तु तुम न आए। वह सन्ध्या का क्षीण प्रकाश भी विलीन हो गया। पश्चिम के क्षितिज पर की लाली का अन्तिम प्रतिबिम्ब भी अन्ध

कार में परिणत होगया। फिर भी खड़ा-ही-खड़ा तुम्हारी राह देखता रहा, बाट जोहता रहा। उस अनन्त पथ पर भी कोई पथिक आता हुआ दूर तक न दिखाई दिया। अन्त में निराश होकर झोपड़ी के द्वार पर बैठ गया।

रात्रि आ ही गई। पुष्पों का जो उपहार मैं तुम्हारे लिए लाया था, वह मेरे ही पास रखा था। उस पर के मँडराने वाले भौंरे भी चले गये। सब ओर अन्धकार छाया हुआ था। निविड़ तम ने समस्त विश्व पर अपना डेरा डाला। रात्रि ने अपने काले अंचल में सारे संसार को लपेट लिया और वह भी विश्राम करने लगी।

सारा संसार शान्त और निश्चल था। कहीं भी कोई ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती थी। समस्त विश्व सोता था, वृक्ष निश्चल थे, पक्षी बसेरा ले रहे थे, पशु सुख की नींद लेटे थे। ऐसे सुप्त संसार में मैं ही अकेला बैठा तुम्हारी राह देख रहा था—तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा अनन्त की ओर ताक रहा था। रात्रि के उस

अन्धकारमय अंचल में यत्र-तत्र तारे चमक रहे थे। एकाएक उस निराशा में भी आशा का संचार हुआ। मैं सोचने लगा, संभव है तुम उन जगमगाते हुए तारों के प्रकाश-पथ पर होकर मेरे पास आओगे।

समस्त संसार को, सारे नभ-मंडल को, खुली आँखों देख रहा था। प्रत्येक क्षण सतर्क होकर ताक रहा था। डर था, कि कहीं तुम आगये और मैं देख भी न सकों। यह भी सम्भावना हृदय में उठ रही थी, कि यदि कहीं मैं सोगया और तुम आगये और मुझे बिना जगाये ही लौट गये तो—। इसीलिए मैं आँखें फाड़-फाड़ कर तुम्हारी राह देख रहा था; किन्तु धीरे-धीरे आशा की एक-मात्र रेखा भी विलीन होने लगी। एक ओर से काले बादलों की घनघोर घटा छाने लगी। एक-एक करके सारे तारे छिपने लगे। आकाश मेघाच्छा-दित हो गया। बूँदें टप-टप गिरने लगीं। मैं भी अपनी झोपड़ी में निराश होकर बैठ रहा—रोता रहा। उधर मेघों की वर्षा और इधर आँखों की वर्षा, मेरी झोपड़ी की भूमि गीली हो गई थी। सारी

आशा उन भयंकर स्वरूप वाले बादलों को देखकर आँसुओं के साथ बह गई, कपूर की नाईं विलीन हो गई। आह!

उस निराशा में भी आशा का प्रकाश था। एकाएक बिजली चमकी। सारा संसार जगमगा उठा। घोर नाद के साथ गड़गड़ाहट हुई। सोचा, कदाचित् यह प्रकाश, यह घोर ध्वनि, तुम्हारे आने की सूचना दे रही है। तुम उन काले-काले गड़गड़ाते हुए बादलों पर बैठ कर अनजाने आ पहुँचे। तुम्हारे लिए जो पुष्प मैं लाया था, वे यत्र-तत्र बिखर गये थे। शीघ्रता-पूर्वक उन्हें चुन कर पुनः एकत्र किया। निराशा ने फिर विदा ली, आशा के साथ उत्सुकता का आगमन हुआ, पुनः आँखें द्वार की ओर टिक गईं।

फिर भी तुम न आये। बाट जोहते-जोहते रात भी बीत गई। प्रातःकाल के साथ पक्षियों ने कलरव आरम्भ किया। वे फुदक-फुदककर अपनी मधुर ध्वनि से संसार को मुग्ध करने लगे। भ्रमरों ने अपनी

हृदयहारी गुंजार आरंभ की। पूर्व दिशा में लाली छा गई। उषा भगवान्-भास्कर के आगमन की सूचना देने के लिए दौड़ पड़ी। मैं विस्फारित नेत्रों से इस दृश्य को देख रहा था। कुछ समय तक मैं मुग्ध रहा; परन्तु तुम्हारी स्मृति एकाएक फिर आ गई। मैं प्रकृति के उस आनन्दमय दृश्य को देख कर फिर सोचने लगा, कदाचित् तुम्हारे आगमन की सूचना पाकर प्रकृति स्वागत का साज सजा रही है। भगवान् मरीचिमाली भी पूर्व दिशा से क्षितिज पर मुस्कराकर झाँके। कदाचित् तुम आते हो, उन सुन्दर सुनहली किरणों पर बैठकर मेरे पास आते हो। आशा फिर जागृत हो गई। तुम्हारे दर्शन के, तुमसे मिलने के, विचार-मात्र से हृदय सिहर उठा। नवीन जीवन का संचार हुआ।

दिन भर बैठा तुम्हारी राह देखता रहा; किन्तु अभी तक नहीं आये। पुनः सूर्य भगवान् अस्ताचल को जाते थे। अपने जीवन-पथ पर अग्रसर होते हुए पशु-पक्षी भी रात्रि को घर लौट रहे थे। राह के पथिक अपने विश्राम का प्रबन्ध कर रहे थे; किन्तु तुम नहीं

आये, बाट जोहते-जोहते न जाने कितने दिवस, कितने मास, कितने वर्ष बीत गये, मैं स्वयं नहीं जानता। तुम्हारा मार्ग देख रहा हूँ, इतने दिवस बीत जाने पर भी तुम नहीं आये। यह भी नहीं जान पड़ता कि तुम कब तक न आओगे।

'कब का खड़ा पन्थ निहारूँ!'

नवम्बर १९२९

आदेश

प्रातःकाल का समय था। सुगन्धित समीर धीरे-धीरे बह रहा था। मरीचिमाली भगवान् क्षितिज से कुछ दूरी पर प्रस्थान कर चुके थे। अभी उनका तेज पूर्णतया व्यक्त नहीं होने लगा था। जगन्मुकुटमणि भारत देश अपनी महान् सभ्यता के मध्याह्न में विकराल राहु-द्वारा ग्रस्त होना ही चाहता था। गंगा-यमुना तथा सिन्धु का क्रीड़ास्थल एक नवीन आभा से उज्ज्वल हो रहा था। इसी मैदान पर दो काली-काली रेखाएँ दीख पड़ने लगी थीं; परन्तु उनकी कालिमा में एक विचित्र भयंकरता दृष्टि-गोचर होती थी।

महाभारत की तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं।

संग्राम का प्रथम दिवस था । दोनों दल युद्ध के लिये बद्ध-परिकर थे । 'अरे ! यह कौन अपने रथ को इधर-उधर दौड़ा रहा है ! यह रथ दोनों सेनाओं के बीच में क्यों ठहर गया ? यह धीर वीर क्षत्रिय अपनी सेना का सेनापति होते हुए भी अपने शस्त्रास्त्र क्यों डाल रहा है ? यह क्या लीला है ?' यह वीरवर अर्जुन था। उसने यह देखकर, कि उसे युद्ध करना ही होगा, अस्त्र डाल दिये । श्रीकृष्ण उसके सारथी बने थे। अपने कर्तव्य से विमुख हो जाने पर—सम्बन्धियों से युद्ध छेड़ने की इच्छा न होने के कारण—श्रीकृष्ण गीता का स्वर्गीय सन्देश सुनाते हुए, गम्भीर वाणी से आदेश करने लगे—

'क्षुद्रं हृदय-दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप !'

पाँच हज़ार वर्ष व्यतीत हो गए । आज फिर वही पुराना दृश्य एक नवीन स्वरूप में हमारे सम्मुख उप-स्थित हुआ है । भारत में नवीन युग का प्रभात हुआ है । पूर्व दिशा में सूर्य्योदय के पहले की लालिमा फैल

रही है ; अज्ञान का अन्धकार अब विलीन हो चला है। अपने प्राचीन दोषों से—पुरानी रूढ़ियों से, जो हमारी जाति को नाश की ओर ले जा रही थीं—हम लड़ने को तैयार हो गये हैं। समग्र भारतवर्ष से एक ध्वनि निनादित हो रही है, 'क्षुद्रं हृदय-दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ', 'सुधार की आवश्यकता है, उन्नति अत्यावश्यक है।' किन्तु ज्यों-ज्यों प्रकाश बढ़ता जाता है, ज्यों-ज्यों हमारे ज्ञान की परिधि बढ़ती जाती है, हमें स्पष्टतया यह दिखाई पड़ने लगा है, कि अपने देश के सुधार के लिए तथा पुराने दोषों को मिटाने के लिए, जो भीषण महाभारत हमें छेड़ना होगा, उसमें हमें अपने पुराने विचारों का संहार करना होगा। पुरातन की हानिकारक रूढ़ियों को खोद-खोद कर दूर फेंकना पड़ेगा। पुराने विचारों के पोषक हमारे आदरणीय सम्बन्धी इसका विरोध करेंगे, उनसे मनमुटाव हो जायगा, यही नहीं, भयानक-से-भयानक विपत्तियों के बीहड़ बन को पार कर, सारे भारतीय समाज में नवीन सन्देश सुना कर क्रान्ति करनी होगी। इन सब बातों पर विचार कर,

अर्जुन के समान हमारे भारतीय युवक तथा नवीन विचारों के पक्षपाती भी झिझक गये हैं। वे कह उठे हैं 'स्वजनों को विरोध करने के लिये तत्पर देखकर हम इस क्रान्ति को यथार्थता में परिणत नहीं कर सकते।'

भगवान् श्रीकृष्ण आज पुनः उन्हें गीता का संदेश सुनाते हैं।

हमें आदेश मिला है कि—'स्वधर्ममपि चावेस्य न विकम्पितुमर्हसि।' अपने उद्योग को कार्य-रूप में परिणत करना ही होगा। समाज में क्रांन्ति का संदेश, नवीन काल के आगमन का समाचार, हमें भारत में घर-घर ले जाना होगा। सोये हुओं को नवीन काल के लिये तैयार होने के लिए सजग करना होगा। हमारा उद्देश्य उच्च है, हम सत्य के पोषक हैं, समाज के हितैषी हैं, समाज को चिरकाल से पतन के कूप से निकाल कर पुनः उसे प्राचीन उच्च स्थान पर स्थित करना ही हमारा ध्येय है; अतः हमें चाहिए कि—'निराशी निर्ममो भूत्वा युद्धस्व विगतज्वरः।' संभव

To:- M. BCL.
Is it true that you are
married to? I pray follow
younger brot...
K.

बिखरे फूल

है, हमें अपने प्रयत्न में सफलता कुछ काल तक न मिले, कई बार हमें मुँह की खानी पड़े ; किन्तु—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' और इस निराशा या विकलता के विचार से यदि हम अपने कर्तव्य से विमुख हो जाँय और युद्ध से मुँह मोड़ लें, तो, 'ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पाप मवाप्स्यसि'। और फिर, 'अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्। संभावितस्य चाकीर्तिमरणादतिरिच्यते।'

अतः हमारा कर्तव्य है, कि हम सब प्रकार की द्विविधा को हटाकर युद्ध के लिए तैयार हो जाँय।

आज भगवान् श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी है और आज भी स्पष्ट शब्दों में उनका आदेश सुनाई दे रहा है।

'क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप'

जौलाई १९२८

क्या पुनः गीता का सन्देश न सुनाओगे ?

बहुत वर्ष व्यतीत हुए, कई शताब्दियाँ हो गईं, जब भारत जगद्गुरु था, सारे संसार का मार्ग-प्रदर्शक था, उस समय इसी भारत-भूमि पर धर्म और अधर्म का भीषण संग्राम मचा था, जिसका अन्तिम दृश्य कुरुक्षेत्र के मैदान पर घटित हुआ था। उस समय नाथ! धर्म की विजय स्थापित करने में सहायता देने के लिए तुम्हें पार्थ के सारथी का काम करना पड़ा था। साथ ही, अधर्म को सर्वदा के लिए नष्ट करने को अपने निमित्त-मात्र अर्जुन को कर्तव्य का पाठ पढ़ाना पड़ा था। अधर्म की ओर अपने साथियों, पूज्यों तक को सहायता देते हुए देखकर, जब अर्जुन युद्ध करने से

हटने लगा, तब तुमने ही नाथ ! उसे कर्तव्य से च्युत नहीं होने दिया था। अपनी सुदूरदर्शी दृष्टि से तुमने यह जानकर कि कदाचित् भविष्य में फिर वैसी ही परिस्थिति उपस्थित हो जाय, अपने साथियों को धीरज बँधाने के लिए—उन्हें अपने कर्तव्य पर डटे रहने के लिए—वचन दिया था—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।

भगवन् ! इस बात को बहुत दिन बीत गये। हज़ारों वर्षों की पुरानी कथा है। नहीं ज्ञात है कि उपर्युक्त वचन आप को अब भी याद हैं या नहीं। कम-से-कम हम आपकी प्रतिज्ञा को अबतक नहीं भुला सके।

उस समय आपने कुरुक्षेत्र के मैदान में गीता का पाठ अर्जुन को कर्तव्य सुझाने के लिए तथा संसार को

निष्काम कर्म की महत्ता बताने के लिए, सुनाया था ; किन्तु उस समय के बाद हमारी दशा बहुत कुछ बदल चुकी है। हम अपना सारा प्राचीन गौरव खो चुके हैं। एक बार जो गिरे, गिरते ही गये ; पर नाथ ! तुम्हारे उस सन्देश के आधार पर अबतक खड़े हैं। यदि आशा का तिरोधान हो जाता, यदि भविष्य का आशा-पूर्ण दृश्य हमारे सम्मुख न होता, तो नहीं मालूम हमारी आज क्या दशा हो जाती ; किन्तु हमें तुम्हारे वचनों पर भरोसा है, उसी पर हिन्दू-धर्म तथा हिन्दू जाति अबतक स्थित है।

परन्तु उस पतन का ऐसा कुप्रभाव पड़ा है, उससे हमारी बुद्धि ऐसी पथरा गई है, अपने कर्त्तव्य अथवा अकर्त्तव्य के पहचानने की चेष्टा इतनी विगत-चेतना हो गई है, कि हम तुम्हारे संदेश को अब समझ तक नहीं पाते, उसे अकर्मण्यता का संदेश समझे बैठे हैं। वह संदेश, जो रण से विमुख होते हुए योद्धा को संग्राम के सम्मुख करने के लिए सुनाया गया था, वही आज न जाने कितने भारतीय युवकों को अपने धर्म से

विमुख कर रहा है। कितनी भीषण काया-पलट हो गई है, हमारी बुद्धि कितनी निस्तेज हो गई है! न जाने कितने युवक आज उसी गीता से वैराग्य का पाठ पढ़ कर संसार का परित्याग कर देते हैं, अपने जीवन-संग्राम से भाग खड़े होते हैं। भगवन्! आज हमारी यह दशा! आपके संदेश का सहारा लेकर आज हम संसार से विमुख हो रहे हैं!

आज हमारी बुद्धि केवल विगत-चेतना ही नहीं हो गई है, हम पथ-भ्रष्ट ही नहीं हो गये हैं, अपने नैतिक पतन के फल-स्वरूप आज हम इस सांसारिक जीवन को भ्रष्ट ही नहीं कर चुके हैं; वरन् धर्म-च्युत भी हो गये हैं। आधुनिक भौतिक-सभ्यता ने हमें अपने आध्यात्मिक पथ से विपथ कर दिया है। थोथी भौतिक सभ्यता अपने बाह्याडम्बर तथा ऊपरी तड़क-भड़क से मनुष्य को, मनुष्यों को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। वह उन्हें पथ-भ्रष्ट करने का प्रयत्न कर रही है। उसके धोखे में आकर हम अपना जीवन नष्ट कर चुके हैं।

किन्तु नाथ ! यदि यह सब यहाँ पर ही समाप्त हो जाता, तो कुछ—यदि संतोष नहीं तो—आशा ही होती ; किन्तु क्या करें, उसके मृत-प्राय शरीर में पुनः प्राण-स्थापन करने के लिये जो प्रयत्न किये गये हैं, उससे हिन्दू-धर्म के क्षेत्र में विद्रोह उठ खड़ा हुआ है। भिन्न-भिन्न मतानुयायी आज एक दूसरे का विरोध कर रहे हैं। समस्त हिन्दू-संसार अराजकता का भीषण क्षेत्र बना हुआ है।

ऐसी दशा में पुनः अकर्मण्य जाति में, जीवन का संचार करने को, अधर्मता को नष्ट करके पुनः धर्म स्थापन के पुण्य-कार्य को तथा मनुष्यों को उनका कर्तव्य-पथ सुझाने को, तुम्हारे अतिरिक्त नाथ ! कौन समर्थ है ?

मृत-प्राय जाति में जीवन-संचार करना होगा। उसकी अकर्मण्यता को नष्ट करके, उसे नवीन पथ की ओर अग्रसर करना होगा। इसी जाति के मुख से पुनः यह शब्द निकलवाने होंगे—

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत।
स्थिरोऽस्मि गत संदेहः करिष्ये वचनं तव॥'

आधुनिक विद्रोहियों के सब भिन्न-भिन्न मतों को दबा कर तथा प्राचीन धर्म में सुधार करके पुनः धर्म-प्रचार करना होगा। यही नहीं. हमें पुनः अपना कर्तव्य बताना होगा, आध्यात्मिक जीवन का मार्ग सुझाना होगा।

नाथ! यह महान् कार्य है। आज हम मृत्यु के गाल में जाने ही को हैं। समस्त जाति में अकर्मण्यता का उन्माद छाया हुआ है। अब तुम्हारे बिना इस जाति को और भी कोई सहारा है? फिर हमें वह तुम्हारी प्रतिज्ञा का स्मरण होता है। यही सत्य है कि हम पतित हो गये हैं, तुम्हारे सन्देश का सच्चा अर्थ समझने में असमर्थ हैं, फिर भी आज तुम्हारा संदेश पढ़ते अवश्य हैं; अतः जब-जब तुम्हारी यह आज्ञा, 'सर्व-धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' पढ़ते हैं, तब-तब यह विचार आता है कि इस नाशोन्मुखी जाति को बचाने के लिए आपको पुनः आवाहन करना होगा, और इसे बचाने के लिए तुम्हें फिर संसार में आना होगा, अवतार लेना होगा; किन्तु हृदय में शंका उत्पन्न होती है कि कदाचित् आप न भी आवें। यदि हमारी

प्रार्थना पर आप ध्यान न दें, तो अपनी प्रतिज्ञा तो पूरी करें। वह प्रतिज्ञा अवश्य पूरी होनी चाहिए; अतएव तुम्हें आवाहन करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ता।

अतएव नाथ! हम कब तक तुम्हारी राह देखें? कब तक बुलाने के लिए तुम्हारी अभ्यर्थना करें?

आओ नाथ! बहुत दिन से उस दिन को देख रहे हैं। पुनः कब वृन्दावन वाली मुरली की वह सुमधुर ध्वनि कानों में पड़ेगी? फिर कब आप की गीता का संदेश हमें कर्तव्य की दिशा की ओर बढ़ाएगा? हम आशा लगाए हैं कि तुम पुनः आओगे, पुनः हमें गीता का संदेश सुनाओगे, पुनः जीवन-संग्राम में विजय पाने का सन्मार्ग दिखाओगे।

बहुत दिनों से आशा लगी है। क्या हमें पुनः गीता का सन्देश न सुनाओगे?

अप्रैल १९२९

अतीत-स्मृति

बीहड़ वन है। सारे जंगल में काँटों से लदे हुए वृक्ष खड़े हैं। झाड़ियाँ इतनी घनी हैं कि पुराने मार्ग अब बन्द हो गये हैं। जंगल को देखकर प्रतीत होता है कि भीषण जीवन-संग्राम हो चुका है। इसी जंगल के एक स्थान पर कुछ खुला हुआ स्थान है। वहाँ झाड़ियाँ नहीं हैं, एक गोलाकार मैदान है। जिस पर हरी-हरी दूब लगी हुई है। इधर-उधर एक आध छोटे पौदे भी हैं और बीच में एक वृहद्‌काय वृक्ष खड़ा है, जिसके मस्तक पर एक ही पुष्प खिला हुआ है। वृक्ष बहुत ऊँचा है। उस पर का पुष्प विकसित होने पर भी पूरा खुला हुआ नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि उस

स्थान पर स्थित होने के कारण सकुचा-सा गया है। उस पुष्प से एक अतीव मनोहारी भीनी-भीनी सुगन्ध बह रही है। इस सुगन्ध से वही एक स्थान नहीं; सारा जंगल सुवासित हो रहा है। उस जंगल में प्रवेश करते ही, वह सुवास प्रत्येक पथिक तक पहुँच जाती है और एक अज्ञात आकर्षण उसे वहाँ तक खींच लाता है; परन्तु उस स्थान तक पहुँचने में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मार्ग की घनी झाड़ियों का उल्लंघन, उनसे बचना, एक समस्या है; परन्तु इन कठिनाइयों का पता पथिक को पहले नहीं लगता। कारण, उस पुष्प की सुगंध उसके पास पहुँच कर मस्त कर देती है। जिस प्रकार बहेलिये के मृदुल संगीत पर मृग अपनी मृत्यु के द्वार पर पहुँच जाता है, उसी प्रकार उस मादकता के छा जाते ही पथिक को यह भूल जाता है कि उस सुवास के केन्द्र-पुष्प तक पहुँचने का मार्ग कंटकाकीर्ण है। अन्त में उस स्थान पर जाकर पथिक लेट जाता है और जब तक तृप्ति नहीं होती और उसकी मादकता नहीं हटती, वह

उन्मत्त होकर पड़ा रहता है और उस सुवास से अभिभूत रहता है। कंटकमय वन में उस निष्कंटक स्थान को देख-कर यही प्रतीत होता है कि उस सुन्दर पुष्प और उसके सुवास के कारण ही वहाँ कोई झाड़ी नहीं रहने पाई।

• • •

बहुत दिन बीत गये। समय के प्रभाव से वह पुष्प भी गिर पड़ा। वह वृक्ष भी जरा-जीर्ण होकर सूख गया। इसी समय एक माली आया। वह अपने को बड़ा ही चतुर समझता था। उसने उस बीहड़ वन को एक सुरम्य उद्यान में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया। इस कार्य में उसको कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई, यह कहना हमारे लिए असम्भव है। हाँ, जहाँ पहले मार्ग भी बन्द हो गये थे, जाने को राह नहीं थी, वहाँ अब लम्बी चौड़ी सड़कें बन गई थीं। जहाँ सारे वन में एक प्रकार की महान् दुर्व्यवस्था थी—जहाँ प्रकृति इच्छा-पूर्वक पथ तथा विपथ में वृक्ष उगाती थी—वहाँ अब एक प्रकार का क्रम, व्यवस्था तथा नियम पाया जाता है। माली ने प्रकृति को नियम-

बद्ध कर दिया, अनेक वृक्षों को काट-छाँट कर नवीन रूप दे दिया। अपने पास के बीजों को भी बोया और नवीन प्रकार के वृक्ष उगा दिये। कई प्रकार के पुष्प खिले, अपना रंग लाए, उन्हें देखते ही एक विचित्र मनोमुग्धकारी दृश्य उपस्थित हो जाता था। इन पुष्पों में भी निराली सुगन्ध थी।

पर आह! यह क्या? जो पुष्प उस बीहड़ वन में खिला था, उसकी सौरभ अब तक नहीं गई, फैल रही है। समय के साथ वह मुरझा गया और सूख कर गिर गया। समय ने उसको नष्ट कर दिया; परन्तु उसकी सुवास को नष्ट न कर पाया। माली ने भी प्रयत्न किया कि उस वन में ऐसे पुष्प खिलें, जो उस पुष्प की सुगन्ध को दबा दें, उससे अधिक मोहक हों। वह प्रत्येक निष्फलता के साथ अधिकाधिक उत्साहित होकर सुगन्धित से सुगन्धित पुष्पों वाले वृक्षों को उगाता था।

एक दिन एक पथिक उस वन की ओर से जा निकला, उसी पुरानी सुवास ने उस पर अधिकार

जमाया। वह खिंचा हुआ एक दिशा में जाने लगा। तन-मन का सब ध्यान भूल गया। एकाएक किसी ने उसे रोका, वह चौंक पड़ा।

'कई पौदे रौंद डाले, मार्ग छोड़कर चल रहे हो, क्या सारा उपवन उजाड़ देना चाहते हो ?'

'नहीं, नहीं ! मैं कुछ नहीं जानता, तुमने जब तक मुझे नहीं रोका, तब तक मैं एक प्रकार से उन्मत्त था, मैं बेहोश था !'

'क्या नशे में हो ?'

'नशा ! मैं किसी भी मादक वस्तु का सेवन नहीं करता। एक मनोहर सुवास आती थी, उसी का उद्गम खोज रहा हूँ। बड़ी ही मादक सुगन्ध है। वह वृक्ष कहाँ है, जिसकी सुगन्ध ऐसी मादक है ? तुम बड़े ही चतुर माली जान पड़ते हो।'

'आओ, पथिक, मैंने कई नये-नये वृक्ष इस उपवन में लगाये हैं, जिनका पहले यहाँ पता भी नहीं था। उनके पुष्प कितने मोहक, कितने सुगन्धित हैं, सूँघकर देखो तो। देखो, यह कैसा सुन्दर पौदा है।'

'नहीं, वह सुगन्ध इसकी नहीं है।'

'कदाचित् इसी की हो।'

'नहीं, नहीं, वह तो और ही प्रकार को है।'

'अच्छा, उधर चलो, वहाँ भी कई वृक्ष मेरे ही लगाये हुए हैं, संभव है, उनमें से ही किसी की सुगन्ध ने तुमको मुग्ध कर लिया हो। वे पुष्प इस प्रकार से भिन्न हैं। मैंने ही उनके वृक्ष यहाँ पहले-पहल लगाये हैं।'

'नहीं, माली! तुम्हारे पुष्प सुन्दर रंग-विरंगे अवश्य हैं; परन्तु सुगन्ध तो उनमें वैसी नहीं है। जिस मादकता पूर्ण सुगन्ध के प्रभाव ने मुझे यहाँ आकृष्ट किया है, वह थोड़ा भी इनमें नहीं पाया जाता। ओह! वह कैसो सुगन्ध है! हृदय यह जानना चाहता है, कि जिसको यह सुगन्ध है, वह पुष्प कैसा होगा।'

कुछ देर के अनन्तर वह पथिक माली से फिर कहने लगा—'माली, अब मुझे ही ढूँढ़ने दो। फिर मुझ पर उस पुष्प की मादकता छाने लगी है। वह सुवास इस वायु-मण्डल में विद्यमान है; अतः मैं उसे

अवश्य ढूढ़ूँगा। मुझे मत रोकना। आना चाहो, तो तुम भी मेरे साथ आ सकते हो।'

माली अब ताड़ गया कि मैं पुनः विफल हुआ। वह जानता था, कि पथिक किस सुवास की बात कर रहा है। एक बार और विफल होने के कारण वह खिन्न होकर पथिक के पीछे चलने लगा। अन्त में वह भी उसी स्थान पर पहुँच गया, जहाँ पहले उस सुन्दर पुष्प को धारण किये हुए वह वृक्ष खड़ा था, पहले वहाँ पर जो दूब थी, वह स्वाभाविक छोटी-छोटी थी। जो अब है, वह भी वैसी ही सुन्दर छोटी-छोटी है; किन्तु यह बात स्पष्ट है कि वहाँ काट-छाँट अवश्य की गई है। अब भी गोलाकार मैदान बना है; किन्तु अपनी स्वाभाविक झाड़ियों से परिमित न रहकर अंगूरों-द्वारा नियमित है। पुनः, पहले जहाँ वह वृक्ष खड़ा था, वहीं एक फव्वारा लगा है और उसके विभिन्न मुखों से धाराएँ निकल रही हैं।

पथिक झूमता-झामता वहाँ पहुँचा और ठोकर खाकर गिर पड़ा। कुछ देर बाद उठा और मतवाले

की तरह लड़खड़ाता हुआ उस फ़व्वारे की ओर चला। माली कुछ दूर पर खड़ा हुआ स्तब्ध होकर पथिक की दशा देख रहा था। एकाएक पथिक को फ़व्वारे की ओर जाते देखकर माली भविष्य की आशंका से चौंक पड़ा और उसकी ओर दौड़ा; पर पथिक पहुँच चुका था। वह उस फ़व्वारे के पास जाकर नीचे बैठकर झुक गया, मानों वह उसके पद छू रहा हो; पर आह! उस फ़व्वारे से निकलनेवाली रंग-बिरंगी धाराओं का कुछ पानी पथिक के शरीर पर गिरा। वह एकाएक उछल पड़ा और 'आह' करके पास ही दूब पर लेट गया। अभी माली आ ही रहा था, दौड़कर देखा; किन्तु पथिक पर जल अपना काम कर चुका था और वह व्यथा से पीड़ित था।

'तुमने यह क्या किया?'

'यही उस सुगन्ध का उद्‌गम है; अतः मैं उस वृक्ष को नमस्कार कर रहा था।'

'नहीं पथिक! तुम्हे भ्रम हो रहा है। यह बात सत्य है, कि बहुत दिन पहले यहाँ वृक्ष था और उसमें

एक पुष्प खिला था। यहाँ आते ही प्रारम्भ में मुझे उसका कुछ-कुछ भान हुआ था; परन्तु उसे नष्ट हुए बहुत काल व्यतीत हुआ। वह पुष्प सूखकर गिर गया और अब उस वृक्ष का भी पता नहीं है। उसी स्थान पर मैंने एक फ़व्वारा लगाया है और उसमें से मैं अपने रसायन-शास्त्र के ज्ञान से भिन्न-भिन्न रंगों की धाराएँ प्रवाहित करता हूँ। मित्र और सम्बन्धी जब यहाँ आते हैं, तो वे यह दृश्य देखकर मुग्ध हो जाते हैं; किन्तु जो जल इसमें से प्रस्फुटित होता है, वह हानिकारक है। यदि यह शरीर पर गिर जाय, तो मनुष्य के लिये घातक होता है, मैं नहीं जानता था। आशंका तक न थी, कि तुम यहाँ पहुँचकर अपनी यह दशा कर लोगे।'

पथिक की दशा बिगड़ रही थी, वह साहस करके बोला—क्या वह वृक्ष सूख गया? नष्ट हो गया?

'हाँ! बहुत काल पहले ही नष्ट हो गया था।'

'तो क्या तुम उसी श्रेणी का कोई दूसरा वृक्ष नहीं लगा सकते?'

'नहीं पथिक, मेरे पास उस वृक्ष के बीज नहीं हैं। मैं यह भी नहीं जानता कि वह वृक्ष कौन है? उसका बीज कहाँ मिलता है?'

'तो अब तुम्हारे लिए उसके उस पुष्प की सुगन्ध ही रह गई है। क्या वही उसकी एक 'अतीत स्मृति' है?'

'हाँ।'

'तो वैसे वृक्ष के बिना तुम्हारा यह सारा उद्यान सूना है, तुम्हारे प्रयत्न व्यर्थ हैं। तुमने एक बीहड़ बन का सुन्दर उद्यान में परिवर्तित किया है; किन्तु आज उस वृक्ष से रहित यह उद्यान उस वृक्ष के समाधि-स्थान ही के समान है। माली! अगर अधिक न हो, वैसा वृक्ष तुम न लगा सको, तो उसकी यह 'अतीत स्मृति' तो न मिटाना।'

जौलाई १९२९

गंगे ! तुम्हारी रीति तो संसार से बिलकुल ही निराली है। तुम्हारा अवतरण हुआ— स्वर्ग से महादेवजी के जटाजूट पर ; और वहाँ से हिमाच्छादित शृंगों पर होती हुई मैदान में बहने लगीं ; परन्तु यहाँ भी अन्त नहीं हुआ, खारे समुद्र में जा मिलीं और अपने अस्तित्व का अन्त कर डाला। परन्तु, तुम्हारे इस पतन ही से तुम्हारा उत्कर्ष है। उच्चासन से गिर कर तुमने संसार का कल्याण किया ; अतएव पतित होकर भी तुम पूजनीया हुईं।

और वह आकाश-गंगा ! नभ में बहनेवाली वह स्वर्गीय धारा ? गंगे ! गिरकर भी तुम उससे उच्च हो,

मोह-क्षोभ के धुँधले बादल, अनिश्चितता का कुहरा—यह सब तुम्हारे प्रवाह को, दृष्टि से ओझल नहीं कर सकते। तुम छाया-पथ-मात्र ही नहीं हो ; वरन् सैकड़ों क्षुब्ध हृदयों को शान्ति-प्रदान करती हो। जहाँ चातक चोंच फैलाकर उस आकाश गंगा से पानी माँगता है और तरस कर रह जाता है, चक्रवाक उसके प्रवाह को पूर्व से पश्चिम की ओर बहते देखता है और रात भर कोसा करता है, वहाँ तुम मृत-प्राय मनुष्य के ओठों को सींचती हो, मृत व्यक्तियों की तप्त भस्म को अपने अञ्चल में समेट कर उसे भी शान्त करती हो। अहो !...तुम्हारे दर्शन-मात्र के लिए, तुममें एक गोता लगाने के लिए, असंख्य व्यक्ति हज़ारों कोसों से खिंचे चले आते हैं।

यही नहीं, तुमने पाप का पुण्य के साथ सौदा किया है। संसार के पापों को बटोर कर अपना पुण्य उसके स्थान पर बाँट रही हो। तुम्हारी इस प्रवृत्ति का पता अब चलता है। ज्ञात होता है, सांसारिक दोष तुममें भी आये बिना न रह सका। जब शंकरजी के जटाजूट

में तुम अपनी राह खोज रही थीं, उस समय तुम्हें भी मृत्युञ्जय के समान विष पीने का चस्का लग गया ; परन्तु अरे ! तुम तो महादेव से भी बढ़ गईं। विष पीकर वे नीलकंठ हो गये ; पर सारे पापों को बटोरकर और कृष्णवर्णा यमुना को भी गले लगाकर तुमने अपना रंग नहीं छोड़ा !

और तुम्हारा प्रवाह ! अनन्त आकाश की तरह तुम भी अपने जगमगाते हुए अंचल में यमुना की कालिमा तथा चमचमाती हुई उज्ज्वल चाँदनी को-सी सरस्वती को समेटे हुए हो। छोटी-मोटी डगमगाती हुई, नौकाएँ उल्काओं के समान तुम्हारे नीले वक्षस्थल पर विचरती हैं और उन्हीं के समान शीघ्र ही विलीन हो जाती हैं ; किन्तु यह क्या ?......सागर के निकट पहुँचते ही तुम्हारा वक्षस्थल विदीर्ण हो जाता है और वह विशाल प्रवाह छिन्न-भिन्न होकर छोटी-छोटी धाराओं में निकलता है। गंगे ! तुम्हीं बताओ कि क्या उस परम ब्रह्म की पुत्री को सहायता प्राप्त होने पर भी अपने पतन का अन्त होते देखकर तथा अपनी विव-

पुष्प ! वह खिलता हुआ पुष्प ! उसका सौन्दर्य कितना हृदयग्राही है ! उसका सौरभ कितना मादक है ! उसका स्वरूप कितना मस्ताना है ; किन्तु नहीं !...ऐ भ्रमर ! तू इस झमेले में न पड़ । इसके उस सुनहले पाश में न पड़ । तुझे मालूम नहीं है, कि इस सुन्दर वस्तु को कितने काँटे घेरे हुए हैं । कितने भ्रमर यहाँ आये हैं और उनमें कितनों को हताश होना पड़ा है ।

वे काँटे......पैने-पैने तीर ! तेरी राह में पड़नेवाले वे रोड़े, सुन्दर किन्तु कठोर हृदय वाले वे काँटे ! वे तो उस पुष्प को रात-दिन घेरे रहते हैं ।...

अरे, जब उस सौन्दर्य से आकर्षित होकर तू अनजाने उन काँटों में बिंधेगा, तब मालूम होगा, कि सुन्दरता को अपनाना कितना कठिन होता है। समझ ले, वे कठोर पैने काँटे तुझ-से काले रंगवाले को उस सुन्दर कोमल पुष्प तक नहीं पहुँचने देंगे।

और......जब तू पड़ा-पड़ा उन काँटों में बिंधा तड़पता होगा, तब कौन तेरी उस दुर्दशा पर रोयेगा! जिसके लिये तूने इतने दुख-दर्द सहे, वह......वह तो खड़ा मुस्कराता ही रहेगा। उससे तेरा क्या सम्बन्ध, जो वह तेरे लिये रोये! तू स्वयं बिना बुलाए मरने चला था। अरे भोले-भाले भ्रमर! इन काँटों में तेरी तरह न जानें कितने बिंध चुके हैं और फँसते ही जाएँगे।......उसने तुझे अपने सौन्दर्य से आकर्षित किया था, यह सत्य है; किन्तु तू क्यों उस लोभ में फँस गया! उन अदृष्ट बन्धनों में बँध गया!

और अन्त में......यह सौन्दर्य तो चार दिन की चाँदनी के समान है। केवल दो दिन की महक है, कुछ ही दिनों का दृश्य है और फिर...नष्ट हो जायगा

वह स्वरूप, विलीन हो जायगा वह सौरभ। बदल जायगा, वह सुन्दर रंग, और अन्त हो जायगा इस कठोर कोमलता का। यह रंग-बिरंगी पँखुड़ियाँ सूख-सूख कर पृथ्वी-तल पर बिखर जायँगी और यहाँ रह जायँगी, केवल वह 'अपत कटीली डार।'

मार्च १९३१

उसका कारण

पुष्प ने वृक्ष से नाता तोड़ा, अपने प्रेमी भ्रमरों को छोड़ा, सुकोमल हरे-हरे पत्तों की सेज छोड़ी, यही नहीं, तीखे काँटों को, जो उसके रक्षक थे, छोड़ दिया।... और यह सब इसी आशा में कि आराध्यदेव के गले का हार बनेंगे, या उसके पूज्य चरणों में चढ़ेंगे।

किन्तु आशा पर पानी फिर गया। उन्हें गले लगाने से हिचके...क्योंकि उसके लिये पुष्प को बिंधना पड़ेगा। और चरणों में भी स्थान नहीं मिला...उस सुकोमल पुष्प को पैरों में डाला जाय ! उन्हें क्या मालूम था, कि जिन्हें वे निष्ठुरता समझ बैठे थे, उससे भी बड़ी-बड़ी कठिनाइयों को वह सहन कर चुका

था ।...किन्तु नहीं...साधारण बातों का विचार करने में वे उसकी आशाओं को कुचल बैठे ।

और अपनी आशाओं को दिल में छिपाये ही वह पुष्प सूख गया । यह जान कर कि आराध्यदेव उसे ऐसे साधारण बलिदान के योग्य भी नहीं समझते, उसने अपने भाग्य को कोसा और वह दिल मसोस कर रह गया । इसी दुःख के मारे वह मुरझा गया !

अप्रैल १९३१

दो बातें

दीपक से पूछा—अपना सिर क्यों धुन रहे हो ?

उसने उत्तर दिया—अपने दिल की जलन के मारे अपने प्रेमी पतङ्ग की मूर्खता पर तथा उसे जलने से बचाने में अपनी विवशता पर !

• • •

दीपक से पूछा—कितनी आशाओं, उमंगों के साथ पतङ्ग तुमसे गले लगने को आता है। अपने शरीर की सुध-बुध भूल कर तुमसे मिलता है। उसके प्रगाढ़ प्रेम का उत्तर तुम उसे जला कर देते हो, अपने प्रेमी के प्रति तुम्हारा यह बर्ताव !

उसने उत्तर दिया—जो वस्तु अपनी हो, जिसे

कोई व्यक्ति अपने हृदय से लगाता हो, वही अपने प्रेमी को भेंट की जाती है। मेरा स्नेह!—वह कभी का जल चुका; और अपना शरीर!—वह बत्ती कभी की झुलस चुकी। मेरे पास रह गई है—केवल दिल की जलन। यही एक वस्तु है, जो मेरी है। उसे गले लिपटाये हुए हूँ, दिल में छिपाये हूँ; अतएव इसके सिवा कोई दूसरी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे मैं अपने प्रेमी को दे सकूँ।

अप्रैल १९३१

पतंगे ने रोकर पूछा—आज यह नक़ाब अपने उज्ज्वल मुख पर क्यों डाले हुए हो !...अरे, इस नक़ाब में तो तुम्हारा चमकता हुआ चेहरा छिपता नहीं है !

कितनी आशाओं से आता हूँ। कितनी उमंगें हृदय में उठती हैं, तुमसे मिलने को...तुम्हे गले लगाने को...किन्तु यह कठोर निष्ठुर नक़ाब...अपने बीच में यह पर्दा...नहीं, नहीं...बहुत अच्छा होता यह नक़ाब पर्दा होता। पारदर्शी न होता। किन्तु...

पतंग उस शीशे पर, उस पारदर्शी नक़ाब पर टकराकर गिर पड़ा, बेहोश हो गया...और जब होश आया...दीपक बुझ चुका था, उसकी झिलमिलाती

लौ विलीन हो चुकी थी। स्नेह का अन्त हो गया था...अब रह गई थी, वह अधजली काली सूखी बत्ती। चारों ओर कालिमा और वही कठोर पारदर्शी नक़ाब ।

अप्रैल १९३५

दुराशा

निरन्तर उमड़ती हुई तरङ्गों पर श्वेत फुहारों के मुकुट से सुशोभित अपना वह मस्तक उठाकर किसको ओर तू आशा-भरी लालायित दृष्टि से देखता है।

किसको सुनाने के लिये तू चिरकाल से अपना वह अमर संगीत गा रहा है।

किसके कठोर हृदय को लुभाने के लिये तू मर्मर ध्वनि में वह दर्द-भरी तान गा-गाकर अपनी हृदय-व्यथा की कथा कह रहा है ?

और किसे देखकर तू दिन-रात समय-कुसमय अपना ममत्व भूलकर उमड़ पड़ता है ?

किसके स्मरण-मात्र से तेरे प्रशान्त वक्षस्थल पर

छोटी-छोटी सुन्दर तरंगें उठती हैं और उन पर तेरी मनोसुन्दरी नृत्य करती है ?

और किसको मनाने के लिये तेरा व्यथित हृदय अनेक बार एक बारगी शान्त हो जाता है और तू नत-मस्तक होकर अपनी नीली चादर में मुँह छिपाये प्रेमिका की ओर चुपके से खिसकने लगता है ?

• • •

किन्तु...!

अरे ! तू शताब्दियों से उसके द्वार पर आवाज़ दे रहा है ; पर तेरी कौन सुनता है ? उन कठोर किनारों पर—उन नुकीले कगारों पर—तू अपना सिर धुन-धुन कर रह जाता है ; किन्तु किसे इसकी परवाह है ?

उस चमकने वाले चाँद को देखकर तू दौड़ पड़ता है, उस तपानेवाले सूर्य की ओर आकृष्ट हो जाता है ; किन्तु उन तक पहुँचना.....? अरे ! यह सूरज और चाँद तो तुझे छेड़ने के लिये ही हैं। उनकी ओर ताकता हुआ तू पागल की नाईं दौड़ रहा है ; किन्तु पृथ्वी के उस कठोर भूमि-तल पर जब जाकर टकराता

है, तब उन उन्नत चट्टानों से टकराकर तेरा सिर-छिन्न-भिन्न हो जाता है और सैकड़ों कणों में चूर-चूर होकर छितर जाता है। तब तुझे पता लगता है अपनी विवशता का...और फिर बेहोश, विह्वल होकर धीरे-धीरे पुनः उस अगाध गह्वर में ढुलक पड़ता है।

और उस पाषाण-हृदया को लुभाने का प्रयत्न... वह भयंकर दुराशा...अरे! उसने तेरी आहों को चुराया, तेरे आँसुओं को सुखाया, तेरे वाष्प-विन्दु तुझसे छीन लिये और तेरे दिल के लहू को निचोड़कर अपने पट को रँग डाला...किन्तु...फिर भी...। अरे! उसने तेरी ओर दृष्टि तक न डाली। तेरी आशाओं को चूर-चूर कर डाला, तेरे नत-मस्तक को ठुकराया और तेरे सारे प्रयत्नों का वह उत्तर...वह तो बलखाती ही जाती है।

• • •

परन्तु...

वह दुराशा...उस चिर प्रेमी सागर ने इस बाड़वा-नल को, चिन्ता की इस दुर्दमनीय अग्नि को, प्रेम-

रस से पूर्ण अपने अगाध हृदय में डुबो दिया...
और...आज भी निराशा की काली घनघटा में
आशा की झलक देखने को वह एकटक दृष्टि लगाये
बैठा है।

जौलाई १९३१

बिखरे फूल

वे प्यारे-प्यारे फूल ! मेरे हृदय-हार में गुँथे हुए थे, प्रेम के अदृश्य सूत्र में बँधे थे, और खिलते हुए यौवन की मस्तानी सौरभ फैला रहे थे।

अपने आराध्यदेव के चरणों पर उस हृदय-हार को चढ़ाने के लिए चला। अपने हृदय के रक्त की लाली से उन पुष्पों को रँगा था। गए-बीते दिनों की मधुर स्मृतियों को एकत्र करके उन पुष्पों में सुमधुर रस का संचार किया और अपने यौवन की मस्ती को लेकर उनमें मादकता भर दी। और अपने इन प्यारे पुष्पों को बिंध जाने का भी कष्ट न हो, इसी कारण उन्हे प्रेम-सूत्र में बाँधा।

• • •

बिखरे फूल

पागल की नाईं उन्मत्त, भावावेश से झूमता हुआ, मैं इस हृदय-हार को लेकर निकला था। किन्तु......? ......कल्पना और भावों की उलझन में वह सूत्र टूट गया, और......आह ! नहीं स्मरण कर सकता, उस भयानक क्षण की स्मृति को। मेरे हृदय के वे टुकड़े बिखर पड़े और भौतिक जगत् की वह आँधी न जाने कहाँ-कहाँ उन्हें उड़ा ले गई।

क्या-क्या आशाएँ थीं ? कितनी उमंग थी ? अपने हृदय की एक-मात्र इच्छा को पूर्ण होते देखकर... अपने ही स्वप्न-लोक में उड़ा जाता था ; किन्तु टूट गया वह हृदय-हार और बिखर गये वे फूल।

• • •

बरसों की तपस्या के बाद अपने संचित भावों को ही अर्पण करने चला था ; किन्तु टूट गया वह हार और लुट गया वह मेरा सारा वैभव-कोष, मेरे पास कुछ भी न रहा ; किन्तु आराध्यदेव के चरणों में कुछ चढ़ाना ही होगा। अब किससे कुछ माँगने जाऊँ ?

और कुछ नहीं, तो अपने इन बिखरे फूलों को ही

क्यों न समेट लूँ। वह प्रेम-सूत्र यद्यपि टूट चुका है; किन्तु फिर भी उन पुष्पों में मेरी स्मृति का सौरभ विद्यमान है। वे फूल भी यद्यपि मुरझा गये हैं, फिर भी अपने लुटाए हुए यौवन की मस्ती उनमें बस रही है। अपने इन बिखरे हुए फूलों को समेटते समय न जानें कितनी पुरानी स्मृतियाँ जागृत हो उठती हैं। अपने उस पुराने स्वप्न-लोक की स्मृति आती है, हृदय में एक उथल-पुथल मच जाती है; किन्तु...विवश हूँ।

उन बिखरे फूलों को बटोरता हूँ और अपने विफल-मनोरथ तथा भग्न आशाओं पर बहाये गये आँसुओं से उन्हें धोकर, अपने हृदय-जल से सींचकर उन्हें पुनः हरा करने का प्रयत्न करता हूँ; किन्तु नहीं......यह कैसे होगा? सब कुछ लुट चुका, फिर भी यह मोह! अपने हृदय-हार के इन अवशेषों को, इन छिन्न-भिन्न अकाल में मुरझाए हुए, अधखिले पुष्पों को, अपने निःश्वास से झाड़कर समेट लूँ। एकबार अपने हृदय से लगाकर जी भरकर रो लूँ और फिर अपनी इस रही-सही सम्पत्ति को भी लुटा दूँ। चढ़ा दूँ

बिखरे फूल

इन बिखरे फूलों को और बहा दूँ अपने आसुओं को, उन चरणों पर और फिर......भूल जाऊँ अपने उस टूटे हुए हृदय-हार को और अपने इन बिखरे फूलों को ।

अक्तूबर १९३१